भारतीय नारी की व्यथा-कथा का दस्तावेज़ : ‘अनुभूति के घेरे’

डॉ. रवीन्द्र एम. अमीन
एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, देहगाम, जिला: गांधीनगर, गुजरात ।
सम्पर्क सूत्र : 9824662828, ravi6003@gmail.com

युगों से विश्व की आधी आबादी अभिशप्त, कुण्ठित, यंत्रणामय, उपेक्षित, अपमानित जीवन जीने बाध्य रही हैं । अनेकशः दण्डविधानों से पुरुषप्रधान समाज ने स्त्री के साथ सदैव अन्याय किया है । अन्याय-अत्याचार का सिलसिला कभी ख़त्म नहीं हुआ, स्वरूप बदलकर अलग-अलग रूप में हमेशा बरकरार रहा है । बीसवीं शताब्दी में नारी-जागृति की लहर चली और अनेक राष्ट्रों में नारी को कानूनन मानवीय अधिकार प्राप्त होने लगे, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकारा जाने लगा । जो कि अभी भी उसकी स्थिति अनेक राष्ट्रों में दयनीय हैं । भारतीय समाज-व्यवस्था में ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः’ कहा तो जाता है, देवी स्वरूप में उसकी पूजा भी की जाती हैं, लेकिन सदियों से घर-परिवार के भीतर, चहारदीवारी में कैद नारी की सिसकियाँ कुछ अलग ही हक़ीकत बयाँ कर रही हैं । युगों से बेज़बान पीड़ा नए युग में अलग-अलग रूपों में व्यक्त होने लगीं हैं । बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दौर से, विशेषतः इक्कीसवीं शताब्दी में प्रमुख रूप से नारी की मूक व्यथा की कथाएँ साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगी हैं । आधुनिक युग के हिन्दी कथा-साहित्य में अलग-अलग कलमों से भारतीय नारी अपने विधविध रूप में सामने आ रही हैं । काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि विधाओं में नारी के मनोसंघर्ष को बखूबी उभारा जा रहा है । नारी-जीवन को प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाले आधुनिक हिन्दी रचनाकारों में एक नाम सुशीला टाकभौरे का है ।

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के सिवनी मालवा क्षेत्र के बानापुरा में 4 मार्च, 1954 में जन्मी डॉ. सुशीला टाकभौरे हिन्दी-साहित्य जगत् में अपनी पहचान स्थापित करने में सफल रही हैं । ‘स्वाति बूंद और खारे मोती’, ‘यह तुम भी जानो’, ‘तुमने उसे कब पहचाना’, ‘हमारे हिस्से का सूरज’ जैसे काव्य-संग्रह, ‘टूटता वहम’, ‘अनुभूति के घेरे’, ‘संघर्ष’ आदि कहानी संग्रह, ‘नंगा सत्य’ नामक नाटक और ‘शिकंजे का दर्द’ शीर्षक आत्मकथा के ज़रिये सुशीला टाकभौरे अपनी स्वानुभूत पीड़ाओं को प्रस्तुत करती रही हैं । नारी-जीवन की विषमताओं, अवहेलनाओं, संत्रास, घुटन, तनाव को अभिव्यक्त करती लेखिका सहज शैली में भारतीय समाज के कटु यथार्थ को उद्घाटित करती हैं ।

‘अनुभूति के घेरे’ संग्रह की अधिकांश कहानियों में नारी-जीवन की यंत्रणाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती संग्रह की कहानियों में वर्णित नारी शोषित हैं, पीड़ित हैं, नौकरी और गृहस्थी का बोझ उठाते हुए जीने बाध्य हैं । उसके

पास कर्तव्य हैं, किन्तु अधिकार नहीं । सामाजिक-नैतिक बंधनों में जकड़ी नारी की मनोव्यथा उसके भीतर ही दबी रहती हैं । 'आँचल में दूध' और 'आँखों में पानी' लिए वह युगों से प्रताड़ित जीवन जिये जा रही हैं । समाज में अन्याय-अत्याचार का शिकार नारी ही क्यों बने ?, यह प्रश्न लेखिका को व्यथित कर देता है । स्त्री की पीड़ित स्थिति के लिए केवल पुरुष ही जिम्मेदार नहीं । अपितु पुरुषप्रधान समाज में नारी-शोषण के लिए परम्परागत संस्कार भी जिम्मेदार है । सुशीलाजी का बिलकुल स्पष्ट मानना है कि -

> "अधिकांश स्त्रियाँ अपनी इच्छा-आकांक्षाओं को हमेशा के लिए दफन कर देती हैं, क्योंकि उनके पास इतना साहस और अधिकार नहीं होता कि वे समाज में सम्मान के साथ तर्क और न्याय द्वारा अपना हक ले सकें ।"[1]

संस्कारों के नाम पर पंगु बना दी गई मानसिकता के चलते नारी अपने अरमानों का गला घोंट देने बाध्य होती हैं । पल-पल प्यार, अपनत्व-प्राप्ति के लिए तरसती 'भूख' की नायिका भारतीय समाज के हर कोने में दिखाई पड़ेगी । सारे अभावों के बीच जीते अपाहिज भिक्षुक पति का अपनी बीमार पत्नी के प्रति चिन्ता, कर्तव्य, प्यार, अपनत्व युक्त व्यवहार देखकर नायिका मन ही मन अपने दाम्पत्य-जीवन की तुलना कर बैठती है । रेलवे या बस अड्डों पर इधर उधर चले गए पति को न देख इंतजार करते हुए अकेली बैठी नायिका विचलित हो जाती थी । लेकिन पति महाशय तो पत्नी को दुश्चिन्ताओं में डावाडोल रखकर अपने आप में खो जाते । आर्थिक रूप से समृद्ध कहे जा सकते अपने जीवन के सामने अभावग्रस्त स्त्री के जीवन के प्यार भरे लम्हें नायिका के दिल में टीस पैदा कर जाते हैं । उसे महसूस होता है -

> "बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरों को अपनी खुशी मान लेते हैं, जो दूसरे के लिए दिलों-जान से हर समय कुर्बान होने के लिए तैयार रहते हैं ।... जिन्दगी भी क्या अजब-सा खेल है - जिसे हासिल हो जाए, वह क्षण भर में कई जिन्दगियाँ जी लेता है और जिसे मिलकर भी न मिले, वह जिन्दगी भर उसे तलाशता रहता है !"[2]

मिलकर भी न मिलने की व्यथा सहना नारी की करुण नियति है !

'त्रिशूल' कहानी में घर-गृहस्थी के बोझ में अपनी इच्छाओं, एषणाओं को दबा चुकी रेणु के अन्तर्मन में पड़ी शंकाएँ दु:स्वप्न के माध्यम से फूटती हैं । बचपन में जो ख़्वाब संजोये जाते हैं, शादी के बाद गृहस्थी के जाल में तहस-नहस हो जाते हैं । दिन-रात पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उठाने में इतनी व्यस्त रहती हैं कि स्वयं के लिए सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता । सारी भौतिक सुविधाओं के साथ भरी भीड़ में तन्हा जीवन यंत्रणा बन जाता है । 'प्रतीक्षा' शीर्षक कहानी में नारी की तन्हाई का दर्द सुमन के माध्यम से फूटता है । प्रौढ़ता की दहलीज़ पर बैठी सुमन ऑफिस में आये नए कर्मचारी विनय को देख 25 वर्ष पहले के अपने प्यार की यादों में खो जाती है । अविवाहिता सुमन के सामने बाद में रहस्योद्घाटन होता है कि विनय उसके पूर्व प्रेमी (एकतरफा) प्रकाश का बेटा है । भ्रम टूटने पर सुमन हताश हो जाती है, शहर छोड़ देने का

मन करता है । कल्पना में जीती और यथार्थ में तिल-तिल मरती रही सुमन के मन में घर कर गए संस्कारों ने कभी मुँह खोलने न दिया । वह 25 वर्ष पूर्व या बाद में कभी प्रकाश के आगे अपनी चाहत का इज़हार ना कर पाई । लेकिन जब पता चलता है कि प्रकाश तो अपने शादीशुदा जीवन में आराम से जी रहा है तो फिर उसे अपनी गलती का बोध होता है । उसे महसूस होने लगता है कि वह क्यों किसी की यादों में जिये या क्यों किसी के सहारे के लिए तरसे ? उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है तो फिर क्यों न स्वतन्त्र जीवन जिये ? अन्त में उसका प्यार व्यष्टि से समष्टि की ओर मुड़ता है और वह समाजसेवी प्रो. सूरज से शादी कर लेने का मन बना लेती है ।

'टुकड़ा टुकड़ा शिलालेख' की नायिका मानती तो है कि स्त्री एक स्वतन्त्र जीवित इन्सान है, पर यथार्थ जीवन में स्वतन्त्र जीवन जी नहीं पाती । 'सूरज के आसपास' की दो बच्चों की माँ, पति के संग सुखी जीवन व्यतीत करती नायिका का भीतरी दर्द कभी बाहर नहीं आ पाता । 'बाहर-भीतर होने' की प्रतीकात्मक व्यंजना द्वारा लेखिका ने नारी-मन की अदृश्य गुत्थियाँ उजागर की हैं । जब तन और मन से पृथक-पृथक जीवन जीना पड़े तब स्त्री की मनोव्यथा बहुत चुभती है । घायल पंछी की भांति बिस्तर पर पड़ी नायिका सोचती है -

> "तन अलग और मन अलग - यह कैसी विड़म्बना है । जहाँ प्राण हैं, वहाँ शरीर नहीं । जहाँ शरीर हैं, वहाँ प्राण नहीं - कैसी अद्भुत अनहोनी है । न उजाला है, न कोई देखने वाला है, न कोई समझने वाला है ।... बाहर मन सिसका, तो अन्दर आँख से आँसू बहने लगे ।"[3]

इसी तरह जीवन में आँसू बहते रहते हैं, सूखते रहते हैं और जिन्दगी कटती जाती है । पति को परमेश्वर स्वीकार कर उनकी सेवा में रत रहना, वे जो आज्ञा दें, उसे तन-मन-धन से निभाना नारी का धर्म माना गया है । धर्मार्थ हेतु शिला बनकर जीने नारी अभिशप्त है ।

आधुनिक भारतीय समाज भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद की गिरफ़्त में आता जा रहा है । बदलते जा रहे परिदृश्य में समाज भौतिकवाद की ओर अग्रसर हो रहा है । नया मध्यवर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नारी-स्वावलम्बन को महत्त्व देने लगा है । लेकिन ध्यान रहे कि आधुनिक नारी स्वावलम्बी हो रही हैं, स्वतन्त्र नहीं । घर-परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ उठाते हुए घर में आर्थिक सहयोग देकर भी उपेक्षित, अपमानित जीवन जी रही हैं । 'घर भी तो जाना है' की आशा दिन-रात नौकरी और गृहस्थी के बोझ़ में दबी रहती है । अपने स्वयं के लिए स्वतन्त्र रूप से जीने का उसके पास अवकाश ही नहीं रहता । कहानी-संग्रह की भूमिका में लेखिका अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए बताती हैं -

> "नारी शिक्षित हो जाए, नौकरी करने लगे, बड़े पदों पर सम्मान और अधिकार सम्पन्न स्थान पा ले, फिर भी घर-परिवार में हमेशा उसे कमजोर औरत के रूप में ही देखा जाता है । इस तरह समाज और परिवार में आज भी उसे स्मृतिकालीन मनुवादी दृष्टिकोण से

> ही देखा जाता है । शिक्षित, नौकरीपेशा स्त्रियों को अनेक अनुबन्धों के साथ दोहरी-तिहरी जिम्मेदारियाँ निबाहना पड़ता है । चाहे घर का काम हो या परिवार की जिम्मेदारी, नारी को ही इसका जिम्मेदार ठहराया जाता है । इसका विरोध करने पर अक्सर परिवार टूटने और तलाक लेने जैसी स्थिति उत्पन्न होती है । यदि स्त्री साहस के साथ आगे बढ़कर संघर्ष करती है, तब भी उसे टूटन और अकेलेपन का सामना करना पड़ता है ।”[4]

अगर नारी समझौता कर लेती है, परम्परा के सामने अपने अरमानों का, अपनी स्वतन्त्रता का गला घोंट देती है तो फिर उम्रभर संत्रास, घुटन, व्यथा, दर्द सहने, घुट-घुट कर जीने बाध्य हो जाती है । ‘भूख’, ‘त्रिशूल’, ‘हमारी सेल्मा’, ‘कैसे कहूँ’, ‘टुकड़ा टुकड़ा शिलालेख’, ‘सूरज के आसपास’ आदि कहानियों की नायिकाएँ यंत्रणामय, शोषित, दोहरा जीवन जीने विवश हैं ।

इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के अन्त तक तो लगभग हर समाज में पुत्र-मोह का नशा बरकरार ही है । शिक्षित समाज में, विशेषतः मध्यवर्गीय परिवारों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या प्रति वर्ष कम होती जा रही हैं । लड़के-लड़की में किये जा रहे भेद से लेखिका व्यथित है । ‘गलती किसकी है’ तथा ‘सही निर्णय’ कहानी में सुशीला टाकभौरे जी समाज की इस समस्या को प्रस्तुत करती है । ‘गलती किसकी है’ में तीन बेटियों की माँ नायिका बेटा न होने के कारण अक्सर अपमानित की जाती है । नायिका सुनीता की बहन ही उसकी जिठानी के रूप में घर में मौजूद थी, लेकिन वह भी अपने पति के साथ सुनीता पर ताना मारती रहती थी । अन्त में बहन व् उसके पति के अतिरिक्त प्यार में उनके बेटे आवारा बन जाते हैं जबकि प्यार, सम्मान और जिम्मेदारी के साथ बड़ी की गई सुनीता की बेटियाँ बेटों से भी विशेष सिद्ध होती हैं । ‘सही निर्णय’ की इन्दु नौकरी करते हुए गृहस्थी की जिम्मेदारी उठा रही थी । दो बेटियों को पालना और समय पर सारे काम करना, नौकरी संभालना, इन्दु के लिए कठिन हो रहा था और इसीलिए गर्भ में रहे तीसरे बच्चे को गिरा देने का कठोर निर्णय लेने वह बाध्य होती है । लेकिन जब ज्ञात होता है कि गर्भ में रहा बच्चा लड़का था, तो उसे बेहद अफ़सोस होता है । परम्परावादी विचारधारा के चलते बेटे की कमी उसके मन को कचोटती रहती है । पर जब अपने निस्संतान रिश्तेदारों, परिचितों को लड़कियाँ गोद लेते हुए देखती है, लड़कियों के प्रति उनके रवैये, लगाव, प्यार को महसूस करती है तो इन्दु को अपनी गलती का बोध होता है । बेटियों के प्रति की गई उपेक्षा से अब उसका मन पछताने लगता है । प्रायश्चित स्वरूप वह अपनी बेटियों को पूरे सम्मान, प्यार से पढ़ा-लिखा कर ‘कुल-दीपक’ बनाने का सही निर्णय लेती है ।

‘सारंग तेरी याद में’ एक लम्बी प्रयोगशील कहानी है, जिसमें सौदामिनी, राजकुमारी के प्रतीक द्वारा दाम्पत्य-जीवन की अनेक पर्तें खोली गई हैं । दाम्पत्य-जीवन के अनेक आयामों को यह कहानी छूती है । भारतीय समाज में हर तीसरी-चौथी स्त्री की स्थिति नायिका सौदामिनी या राजकुमारी-सी हो सकती हैं ! परम्परा के रूप में मानव-समाज पर कुछ मान्यताएँ, मूल्य,

प्रणालियाँ सदियों से अपना डेरा जमाये बैठी हैं । परम्परा के नाम पर नारी के अरमानों का गला घोंट दिया जाता है । गुजराती गीत “दिकरी ने गाय दोरे त्यां जाय...” के अनुसार वर्तमान में भी शादी-ब्याह में समझौता करने नारी को बाध्य होना पड़ता है । प्रश्न यह भी है कि मनवांछित राजकुमार पाने वाली कितनी राजकुमारियाँ सुखी हैं ? ससुराल में गई स्त्री पति के घर-परिवार, सारे नाते-रिश्तों को अपना लेती है, अपना जीवन समर्पित कर देती है, फिर भी किसी न किसी बहाने उसे प्रताड़ित करने के मौके ढूंढे जाते हैं । मायके वापस जाना और अगर वहाँ जाना संभव न हो तो आत्महत्या के अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं रहता । शफिया मौसी (‘दिल की लगी’) की तरह जीवन के अभाव, अकेलापन, तनाव, यंत्रणा, अनकही पीड़ा सहते जाना, आँसू बहाते जाना नारी की नियति बन जाती है । सौदामिनी की यह दुश्चिन्ता अकारण नहीं है -

> “वह ऐसा सोच ही नहीं पाती थी कि बिना दुख उठाये, बिना किसी कठिनाई के राजकुमारी अपनी ससुराल में सुख से रह सकेगी, और सबकी चहेती बन सकेगी । क्योंकि उसने अभी तक यही देखा था कि लड़कियां दुख सहने के लिए ही पैदा होती हैं ।... खूब काम करवाना, मारते-पीटते रहना, दिन रात ताने देते रहना, यदि वह पसंद न आये तो किसी भी तरह उसे जान से मारकर रास्ते से हटा देना - ऐसी अनेक लड़कियों का जीवन उसने स्वयं देखा था ।”[5]

नारी का सुख-दुःख उसके परिवार के सदस्यों पर आश्रित है । तरह-तरह के प्रतिबन्धों, पाबन्दियों में जीती नारी अक्सर हर प्रकार के अत्याचार ख़ामोशी से बर्दाश्त कर लेती हैं, क्योंकि स्वर्ग-प्राप्ति, मुक्ति, पुण्य आदि के लिए पति-धर्म का पालन करना अनिवार्य है । भारतीय आर्य नारी का धर्म ही यह है कि सुख-दुःख जो भी मिले उसे वह किस्मत समझ कर सहती रहे । बचपन से उसे शिक्षा दी जाती है -

> “पति के घर रह कर, उनके पूरे परिवार की सेवा करते रहना ही नारी का धर्म है । लड़की की डोली पिता के घर से जाती है और उसकी अर्थी पति के घर से उठती है । दुख हो या सुख, ससुराल में ही रहो, वहीं जियो, वहीं मरो । इसी से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, इसी से तुम धर्म का लाभ प्राप्त कर सकोगी ।”[6]

नारीवादी संगठनों, न्यायतंत्र की पहरेदारी, नारी जागृति के नारों के बीच भारतीय महिलाओं की मूक चीखें किसी को नहीं सुनाई दे रहीं । परिवार में, समाज में नारी की भावनाएँ, एषणाएँ, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व, व्यक्तित्व कोई मूल्य नहीं रखता । सामाजिक प्रतिष्ठा के मूल्यों का डर, परम्परावादी विचारधारा का खौफ़ आधुनिक नारी को दम्भी जीवन जीने विवश कर रहा है । सौदामिनी के ज़रिये सुशीलाजी शाश्वत सत्य उजागर करती हैं -

> “बहुत से डर हैं, जो आज के नहीं बहुत पुराने हैं, सौ साल पुराने, सदियों पुराने । ये सभी डर नारी के मन मस्तिष्क में कुंडली मार कर बैठ गये हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी नारी हृदय में स्थानान्तरित होते जा रहे हैं, जिन्हें सतर्क समाज लक्ष्मण रेखा की तरह नारी के

> आसपास, सीमा रेखा के रूप में खींचता आया है ।... वह अपने प्रेम को पाप समझकर छिपाती रहेगी । पति कैसा भी हो, उसके साथ जीवन निभाती रहेगी । अपने दुख, सन्ताप को आँसुओं के साथ बहाती रहेगी और अपनी इच्छा-आकांक्षाओं को, गहरी सांस लेकर करुण भाव से गीतों में दोहराती रहेगी...”[7]

संग्रह की अन्य एक कहानी ‘कैसे कहूँ’ में पुरातन, पारम्परिक मूल्यों की शृंखला में जकड़ी नारी का हृदयस्थ डर प्रस्फुटित हुआ है । अज्ञात पाठक का प्रेमपत्र पाकर कहानी की नायिका, जो चर्चित लेखिका है, चिंतित हो जाती है । उसे महसूस होता है कि अगर किसी को यह बात पता चल गई तो मेरे बारे में क्या-क्या सोचेंगे ? किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, वर्ग की स्त्री क्यों न हो, हर कहीं पति के रहते किसी अन्य पुरुष के बारे में सोचना भी पाप माना जाता है । संकुचित मानसिकता वाले समाज में अन्य पुरुष के साथ स्त्री के सम्बन्ध को सदैव शक की निगाहों से देखा-तौला जाता है । मौका हाथ लगते ही लाख गुण क्यों न हो, स्त्री को चरित्रहीन करार देकर समाज भर्त्सना करने लग जाता है । नारी की वेदना का यह दृश्य सहृदयी पाठकों को द्रवित करता है, अन्यायी समाज-व्यवस्था के बारे में सोचने विवश करता है -

> “ ‘एक स्त्री साहित्यकार अपनी साहित्यिक प्रेरणा के लिए एक प्रेमी रख सकती है’ - यह बात कोई कहने या लिखने का साहस नहीं कर सकता । क्योंकि हमारे यहाँ स्त्री के लिए एक पति का होना ही सम्मानसूचक है । पति के अलावा प्रेमी भी हो - हमारा भारतीय पुरुष समाज इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता ।”[8]

पुरुष साहित्यकार सरेआम अपनी प्रेरणा के रूप में प्रेमिका को श्रेय दे सकता है, पर महिला के लिए ऐसा कोई बोलने का भी सामर्थ्य नहीं रखता ।

‘अनुभूति के घेरे’ संग्रह में सुशीलाजी ने अपने आसपास के परिवेश को खोला है । इन कहानियों के पात्रों की पीड़ा, अन्तर्वेदना झेलती न जाने कितनी स्त्रियाँ साँसें भर रही होगी ! घर-परिवार में शारीरिक-मानसिक अत्याचार सहती, घर से बाहर निकलते ही वासनाभूखे भेड़ियों की घृणित हरकतों को झेलती नारी अपने दर्द को भीतर ही दबा कर मुस्कुराते हुए जी लेती है । सुशीलाजी सरल कथ्य और सहज शैली में सामाजिक-नैतिक बंधनों में जकड़ी नारी की व्यथा को बयाँ कर व्यावहारिक जीवन में स्त्री पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सके यही चाहती हैं । अपनी स्वानुभूत पीड़ाओं को कलात्मक साँचे में ढाल कर लेखिका नारी को सम्मान दिलाने, उसे मानवीय अधिकार दिलाने जूझ रही हैं ।

सन्दर्भ संकेत :

1. अनुभूति के घेरे, ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2017, भूमिका
2. वही, पृ. 18
3. वही, पृ. 90
4. वही, भूमिका

5. वही, पृ. 31
6. वही, पृ. 31
7. वही, पृ. 38
8. वही, पृ. 56